ARYAVART SHODH VIKASH PATRIKA
ISSN No. 2347-2944,RNI TITLED No. UPBIL04292
RNI REG. No. UPBIL/2014/66218, SOCLREG. No. 561/2013-14 Vol-5, No.-II,PP-1-3, YEAR-Dec.2016

'राजकमल चौधरी' की कविता में सामाजिक विचार–चिंतन

❑ डॉ. सत्यनारायण पाण्डेय

13 दिसम्बर 1929 को अपने ननिहाल, रामपुर हवेली, जिला सहरसा (अब मधेपुरा जिला) बिहार में राजकमल चौधरी का जन्म हुआ। पितृग्राम महिषी (सहरसा, बिहार) है। प्रकाशित कविताओं के आँकड़े से यह तथ्य सामने आता है कि 1956 से लेकर 1967 (मृत्युपर्यन्त) तक का काल उनकी रचनाशीलता का काल है, पर अप्रकाशित कविताओं की दो डायरियों (जो अब विचित्रा कविता के संग्रह के नाम से प्रकाशित हैं) से यह सूचना मिलती है कि 1950–51 से ही उन्होंने अबाध गति से हिन्दी में कविताएँ लिखीं। उन कविताओं के तेवर से यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि काव्य–लेखन का उनका अभ्यास काल 1950 से पूर्व का ही था। कुल मिलाकर साढ़े सैंतीस वर्ष की जिन्दगी उन्हें नसीब हुई, जिसके प्रारम्भिक बीस वर्ष तो होश सम्भालने, मैथिल जाति की पारम्परिक रूढ़ियों से टक्कर लेने और उससे मुक्त होने में बीते, अन्तिम दो बरस नाना तरह की व्याधियों से संघर्ष करते हुए जीवन से मुक्त होने में। इसी बीमारी के दिनों में, शारीरिक व्याधियों, कामनाओं से खुद को मुक्त करने और देश–विदेश एवं आम जनपद पर छायी समस्याओं, व्याधियों, विकृतियों के महाधुंध से उन्हें मुक्त करने की चिन्ता और चिन्तन के क्रम में फरवरी–जुलाई 1966 के बीच राजेन्द्र सर्जिकल वार्ड, पटना अस्पताल में 'मुक्ति प्रसंग' शीर्षक लम्बी कविता लिखी गयी।

'मुक्ति प्रसंग' और 'कंकावती' के प्रति उन्हें कुछ ज्यादा ही आस्था थी। कवि सौमित्र मोहन को लिखे एक पत्र में इसका प्रमाण मिलता है– 'कंकावती, एक अनार एक बीमार और मुक्ति प्रसंग– मैंने अब तक यही तीन किताबें लिखी हैं और जो चार–छः किताबें मैंने छपवाई हैं, उनमें कोई बात नहीं है, जिसका दावा किया जा सके।' इस उद्धरण से एक बार फिर साबित होता है कि रामकमल चौधरी केवल बेगानों के लिए ही निर्मम, तटस्थ, ईमानदान नहीं थे, अपने लिए भी वे उतने ही निर्मम थे। 'मछली मरी हुई' जैसे शानदार और 'कालजयी' उपन्यास तक को जो रचनाकार अपनी श्रेष्ठ कृति न माने, उसका रचनात्मक लक्ष्य क्या था– वह अनुसन्धान का विषय है।

राजकमल चौधरी अपने पूरे लेखन कर्म में नैतिकता, निष्ठा और ईमानदारी से सृजनरत रहे। उनकी रचनाओं को पाठकों का प्यार और स्वीकार मिला, उन्हें अपनी कृतियों की वकालत नहीं करनी पड़ी, आलोचकों और अपने समकालीन रचनाकारों की उपेक्षा और ईर्ष्या भी भरपूर मिली। आज उनके देहावसान के साढ़े तीन दशक बीत जाने के बाद भी इस ईर्ष्या और आतंक का असर मौजूद है। राजकमल चौधरी के कथा–संग्रह 'पत्थर के नीचे दबे हुए हाथ' की समीक्षा लिखते हुए मुरली मनोहरप्रसाद सिंह ने जनसत्ता में घोषणा की कि 'राजकमल चौधरी की अधिकांश कहानियाँ, 1958 के बाद की हैं। तब तक नई कहानी अपने आन्दोलन उतार पर आ चुका था।[1]

प्राचार्य, भभूतीप्रसाद स्मारक महाविद्यालय, धारा रोड, परिक्रमा मार्ग, फैजाबाद

राजकमल चौधरी का रचना–संसार आधुनिक सभ्यता का विकासमान दानवता के जबड़े में निरीह बैठे जनमानस को ललकारने और उसे अपनी उस ताकत की याद दिलाने का गीत है, जिसे व्यवस्था की चकाचौंध में या बेतहाशा शोरगुल में जनता भूल गयी थी। बेहिसाब तल्ख भाषा के बावजूद जनहित में सारे पहलुओं पर अत्यन्त सावधान आयास हैं राजकमल की कविताएँ। छठे दशक में राजकमल के कम ही निबन्ध प्रकाश में आये। केवल अन्तिम एक–दो बरस में ही चार–छह निबन्ध प्रकाशित हुए। उक्त दशक में उनका ज्यादा योगदान कविता और कहानी में ही है। पर सातवें दशक में जब मशीन–तन्त्र, राजनीति–तन्त्र और अर्थ–तन्त्र देश के नागरिक को चूहों और मच्छरों की हैसियत में ले आए, जहाँ प्राण–रक्षा हेतु टुकड़ा–भर रोटी के लिए चीखती नारी कहे कि–

मुझे खरीद लें/फटे कोट की तरह
टांग दें दीवार पर
भले ही न पहनें/पर, मुझे खरीद लें
मैं भूखी हूँ, प्यासी हूँ, हूँ बीमार
यम के हाथों से मुझे छीन लेंकृ![2]

और दूसरी ओर–

शीला हर सातवें दिन, अपने कल–कारखानों से
गायब रहती है
लीला तुम अपने बैग में क्या रखती हो?
अपने दोस्त के घर की चाबी रखती है
सीता! तुम/सेक्सनल?[3]

ऐसा प्रश्न बेखटके पूछने की स्थिति जहाँ आ जाए, वहाँ और वैसी लोकतान्त्रिक व्यवस्था में किस तरह धार्मिक–सामाजिक–सांस्कृतिक सत्ता के प्रति आस्था रखी जा सकती है? नारी के मान–सम्मान, मर्यादा–महत्व का गायन–भाषण हिन्दू धर्म में पुराकाल से किया जाता रहा है। लेकिन एक–डेढ़ दशक की स्वाधीनता में लोकतन्त्र से आविर्भूत संस्कृति ने भारत देश की नारी को इतना महत्त्वपूर्ण बना दिया कि श्रीमती और लुलू के जीवन के अभाव और भूख की भट्ठी में घर–परिवार, हँसी–खुशी, प्रेम–प्रतिष्ठा के सपने जलने लगे और वे इस निर्णय की ओर बढ़ चलीं कि 'स्त्री देह' और 'स्त्री मन' की स्वामिनी होकर कोई स्त्री गरीब नहीं रह सकती है। लुलू इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि यदि समाज न चाहे तो वह अपना कौमार्य और अपनी नैतिकता लाख दृढ़ता के बावजूद सुरक्षित नहीं रख सकती है।[4]

'अन्न' और 'स्त्री देह' की खरीद–फरोख्त या अपहरण की यह दशा हिन्दी और मैथिली की सभी विधाओं की रचना में राजकमल के यहाँ इसी तीक्ष्णता से वर्णित है। वैसे मैथिली और हिन्दी की रचनाओं में स्थितियों का थोड़ा–सा अन्तर इस प्रकार है कि जहाँ मैथिली कविता की नारियाँ रसोईघर की लक्ष्मण–रेखा के भीतर धुएँ और अन्धकार में घुटती रहती हैं, प्राण–रक्षा हेतु शील अथवा शील–रक्षा हेतु प्राण दाँव पर लगाए रखती हैं, मन का समर्थन न रहने पर भी प्राण–रक्षा के लिए शील–बिक्री अथवा शीलदान करती हुई चीख उठती हैं; वहीं उनकी हिन्दी कविता की नारियाँ आँगन–घर, हाट–बाजार, क्लब–सोसाइटी, बार–हाउस हर जगह जाती हैं, ठसक और आत्मविश्वास के साथ जाती हैं। उन्हें आत्मशक्ति और जिम्मेवारियों की पूर्ति के लिए पैसे चाहिए, पैसे के लिए नौकरी, नौकरी की रक्षा के लिए बॉस की कृपा, जवान स्त्री की देह, मन और ताज़गी, समाज में निष्कलुश बने रहने के लिए कंट्रासेप्टिव्स गोलियाँ चाहिए। जिन्दगी और जिम्मेवारियों के चक्र को इतने कम समय में इतनी तिकड़मों से खींचने के लिए तैयार होने में भारत की नारियों को जिस मानसिक यातना से गुज़रना पड़ा होगा,

ISSN No. 2347-2944,RNI TITLED No. UPBIL04292
RNI REG. No. UPBIL/2014/66218, SOCLREG. No. 561/2013-14

Vol-5, No.-II,PP-1-3, YEAR-Dec.2016

उसकी कल्पना कौन कर सकता है? जिस लड़की को–नौकरी, फैशन और सिर/सलामत रखने के लिए शान्तिनिकेतनी/बैग में चन्द गोलियाँ, सैरीडान की/कंट्रासेप्टिव की......... ।[5] रखनी पड़ती है, 'जहर की नहीं' रख पाती है, उसकी जीवन–कथा और कर्म–व्यथा कौन गा सकेगा! जिस देश का बचपन 'पाँवों में चिथड़े लपेटकर/फैलाए हुए अपने दोनों नन्हें हाथ' मन्दिरों के सामने भीख माँगे, जिस देश की अनाथ कन्या 'अपनी जाँघों का कच्चा मांस बेचती हुई' (मुक्ति के विशय में आसक्ति की एक परिकल्पना) रोती रहे, जिस देश के युवक 'बहिर्जगत की चिन्ता' छोड़कर 'गज–गामिनी कामिनी आगमन–प्रतीक्षा' (मैथिली कविता) करने लगे, जहाँ की भीड़ अब खाने के लिए गेहूँ/ओर सो जाने के लिए किसी भी गन्दे बिस्तर के सिवा कोई बात/नहीं कहती है[6], जहाँ 'लोकसभा में अन्न–मन्त्री कहते हैं– बसते हैं कोई पाँच अरब चूहे/इस देश में' (अर्थात्, या तो भारत देश की जनता को चूहा समझा जा रहा है अथवा चूहे के कारण गोदाम में अनाज का अभाव होता जा रहा है) उस देश में कविता तो क्या, साधारण बोलचाल में भी रुखाई, तीक्ष्णता और सच की नग्नता आ जानी चाहिए। अकविता आन्दोलन के दौरान हिन्दी में लिखी जाने वाली कविता की जैसी संरचना थी, वस्तुतः उसी की आवश्यकता भी थी और राजकमल चौधरी के साथ इस दौरान अन्य कई समर्थ कवितों ने इस दिषा में पूरी दमदार रचनाएँ की।

सन् 1964 में राजकमल की कविताओं का पहला संकलन 'कंकावती' प्रकाशित हुआ। 1964 में ही लिखी गयी उनकी लगभग पन्चानवे कविताओं के इस संकलन की मात्र पचास प्रतियाँ ही प्रकाशित हुईं। संकलन की भूमिका का नाम कवि ने 'कंकावती–1964' रखा और पुराण से लेकर शब्दकोश तक में उल्लिखित कंकावती के विभिन्न संदर्भों की चर्चा करते हुए कहा– 'कंकावती में ये सारे कोशगत शास्त्र रूप, सन्दर्भ, गुण, अर्थ समग्र रूप में उपस्थित हुए हैं। कंका से विवेकहीन घृणा, आसक्ति, हिंसा, संभोग, ईर्ष्या, क्षमा, विरति करते हुए मैंने प्रति क्षण अपने अहं और अस्तित्व को प्रमाणित किया हैं इस कृति के अधिकांश अनुभव और प्रभाव आत्मस्वीकृतियाँ (केवल कन्फेशन नहीं, रिअलिजेशन भी) हैं।' इस संकलन की कविताएँ कई मायने में व्याख्येय हैं। भाषा, शिल्प, कथन, शैली, कविताओं की प्रस्तुति, वाक्य संरचना, शब्द संयोजन, वर्णों और पदों के विखण्डन, यति–विराम की प्रयुक्ति, पंक्तियों की नाप–जोख, व्यक्तिपरक एवं पौराणिक–मिथकीय बिम्बों, प्रतीकों के नये प्रयोग आदि के कारण यह संकलन हिन्दी कविता में नये अध्याय का समावेशन है। शलभ श्रीराम सिंह ने स्पष्ट कहा है कि– 'कंकावती में उसने (राजकमल चौधरी ने) सम्भवतः पहली बार हिन्दी कविता के सामने एक नमूना पेश किया है। कंकावती की रचना नग्न नद्य है।'[7] वाकई कंकावती की कविताएँ पद्य और गद्य के चौखटे तोड़कर उद्दाम प्रवाह वाली नदी की तरह बहती हैं और कवि की आत्मस्वीकृतियाँ होने के बावजूद ये समकालीन समाज के कुछ खास हिस्से का सामूहिक सच लगती हैं।

आजादी के बाद के डेढ़ दशक में भारत में न केवल घटनाओं की बहुलता देखी गयी, बल्कि सामान्य नागरिक के जीवन–क्रम पर उसका असर भी ह्दय विदारक हो उठा। राजकमल चौधरी ने उस दारुण दशा वाले समाज के जीवन के सहयात्री के रूप में घोशणा की कि 'मैं तटस्थ नहीं हूँ, और न कोई तमाशबीन हूँ। मैं संजय नहीं हूँ और न धृतराष्ट्र। मैं अपने बाहर और अपने अन्दर महाभारत युद्ध में शामिल हूँ। युद्धरत हूँ, तटस्थ होना मेरे लिए नंपुसक होना है। और मैं

Vol-5, No.-II,PP-1-3, YEAR-Dec.2016

जानता हूँ, नपुंसक होकर मनुष्य और उसका कवि, उसका स्रष्टा दोनों मर जाते हैं। मुझे मृत्यु नहीं चाहिए।'[98] कविता को अपना जीवन समझना और युद्धरत रहना जिस कवि ने अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया हो, जो कवि नागरिक के सामूहिक जीवन क्रम को निजी जीवन की तरह भोगे, उसकी कविता में, उसके सम्पूर्ण सृजन में विकृतियों, विसंगतियों से परिपूर्ण डेढ़ दशक की आजादी का चेहरा वैसा ही उतरना था, जैसा राजकमल चौधरी के यहाँ उतरा है।

1965 में राजकमल चौधरी ने 'दास कविता' लिखनी शुरू की थी। कई पृष्ठों की इस लम्बी कविता का काफी हिस्सा लिखा जा चुका था, किसी कारण से वह न तो पूरा हो सका और न ही कहीं छप सका। 1988 में यह महत्वपूर्ण धरोहर 'अकाल बेला' में संकलन में प्रकाशित हुई। संकलनकर्ता सुरेश शर्मा को यह कविता राजकमल के करीबी मित्र एवं कवि राजेन्द्रप्रसाद सिंह से प्राप्त हुई थी। उनकी सर्वप्रसिद्ध कविता 'मुक्ति प्रसंग' 15 अगस्त 1966 को प्रकाशित हुई। इसके प्रकाशन के बाद एक वर्ष भी वह जिन्दा नहीं रह सके। काश, 'दास कविता' पूरी हुई होती! यों तो अकाल–मृत्यु के कारण राजकमल चौधरी की कई रचनाएँ पूरी नहीं हो पायीं, पर 'दास–कविता' की अपूर्णता खटकने लायक है।

राजकमल चौधरी का दृष्टिकोण और भूमण्डल की समस्याओं का बोध इतना दुरुस्त और स्पष्ट था कि उसके चित्रण में उन्हें कहीं कोई असुविधा नहीं हुई। (सब कुछ बुझ गये अचानक पन्द्रह अगस्त की/पहली रात के बाद/अब राख ही राख बच गया है पीला मवाद और क्यों एक ही युद्ध मेरी कमर की हड्डियों में और कभी/वियतनाम में) जैसी पंक्तियों में शारीरिक व्याधि और राष्ट्रीय अन्तरराष्ट्रीय संकट को कवि समतुल्य, वेदना की तरह यदि झेल रहा है, तो यह कवि के सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोण की सूक्ष्मता और परिवेश के प्रति जागृति का ही परिचायक है। लम्बी बीमारी के दौरान रोग–शैय्या पर बैठकर निर्बाध और निर्द्वन्द्व साहस के साथ लिखी गयी लम्बी कविता 'मुक्ति प्रसंग' में कवि ने लगभग दो दशक की आजादी के दौरान देश में आयी व्याधियों को व्यक्त करने हेतु इतिहास, पुराण, मिथक, यथार्थ, विश्व घटनाचक्र आदि के सहारे गढ़े हुए बिम्बों का और निजी बीमारी का उपयोग किया है। ऐसा परिलक्षित होता है कि उनकी पूरी सृजन–यात्रा इस एक ही विषय–बोध के आस–पास नाना तरह से पूरी हुई है। हाँ, यह बात जरूर है कि उस विषय का आयाम इतना विस्तृत है कि उनमें सारे के सारे परिदृष्य समा जाते हैं।

सन्दर्भ–ग्रन्थ :

1. जनसत्ता 9 जून, 2002।
2. मैथिली कविता, राजकमल चौधरी।
3. अनिर्णय : सात कविताएँ, राजकमल चौधरी।
4. अग्निस्नान, राजकमल चौधरी।
5. राजकमल चौधरी, कंकावती, पृ. 4।
6. राजकमल चौधरी, मुक्तिप्रसंग, पृ. 7।
7. लहर, दिसम्बर–जनवरी, 1968, पृ. 55।
8. मेरी कविता, लहर, फरवरी, 1968, पृ. 48।